VOL- VIII ISSUE- II FEBRUARY 2021 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.149 ISSN 2349-638x

HkeMyhdj.k d ifjlk{; e vkfnoklh vfLerk dk ldV

euh"k dekj fl g
शोध छात्र
हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Hkमंडलीकरण का प्रभाव बहुत व्यापक होता है। यह हम सभी को किसी न किसी प्रकार से प्रभावित करता है। कुछ के लिए इसका अर्थ नए–नए अवसरों का उपलब्ध होना है तो दूसरे के लिए आजीविका की हानि भी हो सकती है। जिनमें मुख्य रूप से आदिवासी समाज के लोग है। नए कम्पनियों के लगने से तथा अंधाधुन उत्खनन होने से आदिवासी समुदाय के लिए विनाशकारी सिद्ध हो रहा है।

साहित्य का लक्ष्य ही है वंचित समाज को स्वर प्रदान करना और मानवीय मूल्यों की रक्षा करना। इन्हीं वंचितों में आदिवासी समाज के लोग सदा–सदा से समाज में हाशिए पर ही है। आदिवासी समाज का जंगल एवं प्रकृति से गहरा प्रेम है। आदिवासी समाज और जंगल के बीच माँ और बेटे का रिश्ता है। वे कभी भी अपनी माँ का नाश सहन नहीं करते। अपने आवश्यकता के अनुसार जीतने पेड़ काटते है, उससे अधिक पेड़ लगा देते है। आदिवासियों के सारे पर्व एवं त्यौहार जंगलों पर ही आधारित है। आदिवासी समाज अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह जंगलों पर ही निर्भर रहते है। रमणिका गुप्ता जी इस जुड़ाव भाव के बारे में कहती है– ''अपनी समूह और समाज से जुड़कर प्रकृति का साथी बनकर जीना उसकी शैली और स्वभाव रहा है। वह प्रकृति से संवाद करता है, उसकी सहयात्री है, उसको गाय की तरह पोसता और दुहता है, उसे कब्जे में लाने का कभी भी उसका लक्ष्य नहीं रहा है।

प्रकृति के प्रकोप को वह सहता है, सहता रहा है और रोकता भी रहा है। उसके मुकाबले खड़ा भी रहता है। पर सदैव उसका मित्र बना रहता है, प्रतिशोध की भावना से भरकर वह प्रकृति को नष्ट नहीं करता। वह उसे रिझाता है, मनाता है और केवल जीने भर या जररूरत भर उससे लेता है, पर उसे बदले में देता है अपना प्यार, अपनी देखरेख और अपनी संवेदना।''[1]

इतिहास में पहली बार ऐसा हो रहा है कि आज आदिवासियों का वन क्षेत्र पर कोई नियंत्रण नहीं हैं कीमती लकड़ी तथा खेती व उद्योगों के लिए विराट वनभूमियों को साफ किया जा रहा है। इनके इलाकों में खनिज पदार्थों एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों की पहले से ही प्रचुरता रही है। इसलिए इनके जमींनों को खनन और अन्य बड़े औद्योगिक परियोजनाओं के लिए इनसे छीना गया है। आदिवासी भूमि पर कब्जा करने के लिए शक्तिशाली समूह ने हमेशा मिलकर काम किया है। बहुत बार उनकी जमीन जबरदस्ती छीनी गई है और निर्धारित प्रक्रियाओं का पालन बहुत कम किया गया है सरकारी आकड़ों से पता चलता है कि खनन और औद्योगिक परियोजना के कारण विस्थापित होने वालों में लगभग 50 प्रतिशत से अधिक आदिवासी है। आदिवासियों के बीच कार्य करने वाले विभिन्न संगठनों के सर्वेक्षण रिपोर्ट से पता चलता है कि झारखण्ड, छत्तीसगढ़, आन्ध्रप्रदेश और उड़ीसा से जो लोग विस्थापित हुए है उनमें से 80 प्रतिशत आदिवासी है। उनकी जमीने देश भर में बनाए गए बाँधों के जलाशयों में डूब चुकी हैं। जब आदिवासियों को उनकी जमीनों से हटाया जाता है तो उनके जीविका के स्रोत के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है जो सदैव के लिए नष्ट हो जाता है। वे अपनी सांस्कृतिक परम्पराएँ और रीति–रिवाज गँवा देते है जो कि उनके जीवन और अस्तित्व का स्रोत है। इस सन्दर्भ में श्री गंगा सहाय मीणा 'आदिवासी साहित्य विमर्श' की भूमिका में लिखते है कि– ''आदिवासी

साहित्य में आई आदिवासियों की समस्याओं को मोटे तौर पर दो भागों में बाटा जा सकता है– उपनिवेश काल में साम्राज्यवाद और सामंतवाद के गठजोड़ से पैदा हुई समस्याएं और दूसरे आजादी के बाद देशी शासन की जनविरोधी नीतियों और उदारवाद के बाद की समस्याएँ।''[2]

भूमंडलीकरण को लेकर सीधे विरोध का स्वर अगर किसी अस्मिता के अन्दर है तो वह है आदिवासी। पूरे विश्वव्यापी पृष्ठभूमि में भूमंडलीकरण आदिवासी अस्मिता के लिए संकटजनक साबित हुआ है। वैश्वीकरण के दौर में बाजार एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने सबसे अधिक पर्यावरण को नष्ट किया है। आदिवासी इसी पर्यावरण के बीच में रहने वाले है जिनके पास मुख्यधारा की संस्कृति के विपरीत स्वयं की संस्कृति है। आदिवासियों के लिए भूमंडलीकरण के बाद सबसे अधिक जंगल को बचाने का प्रश्न आया। यह आदिवासियों की अस्मिता से जुड़ा हुआ है। इसी के आस–पास उनकी भाषा तथा संस्कृति का निर्माण होता है। वैश्वीकरण के प्रवाह में उनकी संस्कृति एवं भाषा नष्ट होते जा रही है। आदिवासी विस्थापन की समस्या से ग्रस्त है। सरकार के शक्तिशाली लोग आदिवासियों के घरों, खेतों पर अधिकार करते जा रहे है। विकास के नाम पर जंगलों का अतिक्रमण हो रहा है आदिवासी प्रकृति से साहचर्य स्थापित करता है और उससे उतना ही ग्रहण करता है जितना उसकी आवश्यकता है। यह जंगल पर चलते कुल्हाड़े से दुःखी होता है– ''कल एक पहाड़ जो ट्रक पर जाते हुए देखा/उससे पहले नदी गई/ अब खबर फैल रही है कि/मेरा गाँव भी चंदा से जाने वाला है।''[3]

मुख्यधारा की प्रक्रियाओं में आदिवासी समुदायों के जबरदस्ती सम्मिलित करने का प्रभाव आदिवासी संस्कृति तथा समाज पर ही नहीं बल्कि उनकी अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा है। आज आदिवासियों की पहचान उन आदिवासियों की मौलिक विशिष्टताओं को जो कि सिर्फ आदिवासियों की होती है के बजाय, इस अन्तः क्रियात्मक प्रक्रिया से बन रही है। क्योंकि मुख्यधारा के साथ अतः क्रिया आदिवासी समुदायों के लिए अनुकूल शर्तों पर नहीं होती। इसी कारण आज आदिवासी पहचानें गैर–आदिवासी संसार की दुर्दमनीय शक्ति का विरोध करने के विचारों पर अपना ध्यान आकर्षित कर रही है। एक लम्बे समय के बाद झारखण्ड और छत्तीसगढ़ को अलग–अलग राज्य का दर्जा मिल गया, परन्तु ऐसी सफलताओं का सुनिश्चित प्रभाव पहले से चली आ रही समस्याओं के कारण लुप्त हो गया है। उदाहरण के लिए देखा जाए तो पूर्वोत्तर के राज्य कई वर्षों से ऐसे विशेष कानूनों के अधीन है, जिससे वहा के जनजातियों की नागरिक स्वतंत्रताएँ सीमित हो रहीं है। इस पर आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल जी लिखती है– ''आओं मिलकर बचाएँ/अपनी बस्तियों को/नंगी होने से..... भीतर की आग/ धनुष की डोरी/ तीर का नुकलीपन/कुल्हाड़ी की धार/जंगल की ताजा हवा/नदियों की निर्मलता/ पहाड़ों का मौन''[4]

भूंमडलीकरण और पूँजीवादी व्यवस्था के तहत व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए विभिन्न अभियानों को न्याय सम्मत ढहराये जाने की कोशिश पूरी चालाकी के साथ की जा रही है। जनजाति साहित्य जनजाति अस्मिता की खोज और उन पर किए जा रहे अत्याचार और शोषकों के विरूद्ध विकसित हो रही ऐसी चेतना है जिसमें अपने अस्तित्व के संकटों और उसके विपरीत हो रहे कार्यों के प्रति तीव्र स्वर मुखरित हुआ है।

इस सन्दर्भ में महादेव टोप्पों लिखते है कि– ''तुम्हारी विजयगाथाओं/ और संघर्षों के गवाह/ पेड़ है नदियाँ है चट्टाने है/पुरखों की आत्माएँ है/सरसस नदीरी, जोहर थान है/ तुम्हारे लोक गीत है/ पर इन सबकी गवाही, उन्हें नहीं स्वीकार /इसलिए तुम इतिहास के ग्रंथों में/हाशिए पर डाल दिए गए हो/या कर दिए हो उससे बाहर।''[5]

जनजातियों के मामले में, उनकी बस्ती एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में आने जाने से उनकी अवस्था और भी खराब हो रही है। पूर्वोत्तर राज्यों को छोड़कर देश में कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ केवल आदिवासी लोग ही रहते हो, सिर्फ ये ऐसे क्षेत्र है जहाँ आदिवासियों का जमावड़ा अधिक है। अर्थात् उनकी जनसंख्या अधिक है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से लेकर अब तक बहुत से गैर–आदिवासी लोग मध्य भारत के आदिवासी जिलों में जा बसे हैं उन्हीं जिलों के आदिवासी लोग भी व्यवसाय की खोज में कारखानो, बागानों, खानो तथा व्यवसाय के अन्य स्थलों में चले गए है।

जिन क्षेत्रों में आदिवासी लोगों की जनसंख्या अधिक है, वहाँ पर उनकी सामाजिक और आर्थिक

हालत, गैर, आदिवासी लोगों की अपेक्षा, अधिक बुरी है। गरीबी और शोषण की जिन परिस्थितियों में जनजाति अपना निर्वाह करने के लिए विवश है, उनका ऐतिहासिक कारण यह रहा है कि औपनिवेशिक अंग्रेज सरकार ने शीघ्रता से जंगलों के संसाधनों का उपयोग करना शुरू कर दिया और यह सिलसिला आगे स्वतंत्र भारत में भी जारी रहा। इस सन्दर्भ में गंगा सहाय मीणा लिखते है कि – ''आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किए गए और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता व अस्तित्व के संकटों और उसके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकारी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध कराती है तथा उनके जल, जंगल जमीन और जीवन को बचाने के हक़ में उनके 'आत्मनिर्णयक' के अधिकार के साथ खड़ी होती है।''[6]

सन् 1947 में भारत के आज़ाद हो जाने के बाद, जनजातियों की जिन्दगी आसान हो जानी चाहिए थी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि जंगलों पर सरकार का एकाधिकार जारी रहा। यहाँ तक कि वनों की कटाई में तेजी आ गई। दूसरा कारण यह था कि भारत सरकार द्वारा अपनाई गई पूँजी–प्रधान औद्योगिक नीति को निर्वाहित करने के लिए खनिज संसाधनों और विद्युत उत्पादन की आवश्यकता थी और ये संसाधन प्रमुख रूप से जनजाति क्षेत्रों में ही स्थित थे। नई खदान और बाँध कार्यान्वित करने के लिए जनजाति जमीने अधिगृहीत कर ली गई। इस तरह लाखों जनजातियों को पर्याप्त क्षतिपूर्ति और उपयुक्त पुनर्वास की व्यवस्था किए बिना विस्थापित कर दिया गया। राष्ट्रीय विकास के नाम पर इस कार्य को न्यायपूर्ण ढहराया गया। इस प्रकार इन नीतियों का उद्देश्य एक प्रकार से आंतरिक उपनिवेशवाद ही था। जिसके अन्तगर्त जनजातियों को अपने अधिनस्थ करके उनके संसाधनों को छीन लिया गया। इस सन्दर्भ में आदिवासी कवि सुरेन्द्र नायक अपनी कविता में लिखते है–

''अरण्य पुत्रों के लिए कुछ नहीं बदला/वहीं गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी/ सेठ साहूकारों के शोषण/भ्रष्ट पूँजीपति नेताओं, माफियों के दमन चक्र/ जमीन, हमारे जंगल से/हमें बेदखल करने का भीषणतम शड़यंत्र/अमानवीय उत्पीड़न/... और पुलिस की गोली।''[7]

आदिवासी विकास विचारणीय मुद्दा है। भारत के प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू जनजाति विकास को लेकर चिन्ताग्रस्त रहते थे। वे चाहते थे कि आदिवासियों का विकास हो यह अत्यन्त जरूरी है किन्तु ऐसा करने के दौरान उनका जीवन और संस्कृति जो उन्हें दूसरों से अलगाते है, उनका आनन्द वे खो ना बैठे। लेकिन आज आदिवासियों के साथ वहीं हो रहा है जिसका नेहरू जी को डर था।

जनजातियों के जंगल, गाँवों तथा संसाधनों पर कब्जा कर उन्हें यहाँ–वहाँ भटकने के लिए मजबूर करने के पीछे प्रमुख कारण सरकारी व्यवस्था है आदिवासियों ने सरकार द्वारा संचालित योजनाओं को इसलिए स्वीकार नहीं किया कि वे योजनाएँ उनकी सामाजिक व सांस्कृतिक व्यवस्था तथा उस पर आधारित जीवन शैली व नैतिक मूल्यों के अनुरूप नहीं है। आदिवासी विकास योजनाएँ केवल कागज़ों की दौड़ लगा रही है या उच्च अधिकारियों की तोंद में जा रही है, यह प्रश्न आज भी जिज्ञासा का विषय है। इस सन्दर्भ में मुझे दुष्यन्त कुमार की पंक्तियाँ याद आ रही है–

यहाँ तक आते–आते सूख जाती है कई नदिया,

मुझे मालूम है कि पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।

lUnHk xUFk lph&

1. रमणिका गुप्ता–आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–19
2. सं. गंगा सहाय मीणा, आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2014, पृ.11
3. अनुज लुगून–इस्पातिका, आदिवासी विशेषांक, जनवरी–जून 2012, रांची, पृ. 32
4. निर्मला पुत्तुल–नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, तृतीय संस्करण–2012, पृ. 76
5. महादेवी टोप्पो–इतिहास तुम्हारा है(कविता)सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नयी कविता, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2005

6. सं. गंगा सहाय मीणा, आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड हिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2014, पृ.–09
7. सुरेन्द्र नायक, ऊल लुगान' युद्धरत, नई दिल्ली, अप्रैल–जून आमआदमी 2008, पृ. 64

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com